20

अज्ञान

प्रस्तावना

बृहदारण्यकोपनिषद् में ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः'' (1-5-6) ऐसा सुना जाता है, इस वाक्य का अर्थ ऐसा है कि, आत्मा का ही श्रवण, मनन एवं पुनः पुनः स्मरण करना चाहिए। श्रवण मनन व पुनः पुनः स्मरण (निरन्तर ध्यान) आत्मज्ञान हेतु साधन होते हैं। यह श्रवण इत्यादि आत्मज्ञान को उद्देश्य मानकर ही किया जाता है। इसी प्रकार से ''सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः'' (छा. उ. 8-7-1) इत्यादि वेदान्त वाक्यों में आत्मज्ञान को लक्षित करते ही श्रवणादि का उपदेश किया है, श्रवणादि साधनों के माध्यम से अज्ञान की निवृत्ति होती है। तथा फिर उससे स्वप्रकाश नित्य आत्मस्वरूप में भासित होता है। अतः आत्मज्ञान का अर्थ होता है कि- अज्ञान से निवृत्ति। जैसे बादलों से ढका सूर्य का प्रकाश बादलों के हटने पर प्रकाशित होता है वैसे ही स्वप्रकाश भी आत्मा के मेघसदृश अज्ञान के कारण हमारे द्वारा नहीं देखा जाता है, इसलिए आत्मस्वरूप के ज्ञान के लिए अज्ञान के आच्छादन को दूर करना चाहिए। इसलिए अज्ञान क्या है? उसका स्वरूप क्या है? इत्यादि विषय आत्मत्तत्वज्ञान के लिए अवश्य जानने चाहिए।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अज्ञान का स्वरूप व लक्षण जान पाने में;
- अज्ञान के लक्षण में प्रयुक्त पदों का अर्थ विवरण जान पाने में;
- अज्ञान के निरूपण में प्रमाणों का उपयोग कर पाने में;

टिप्पणी

- प्रत्यक्ष प्रमाण से अज्ञान का निरूपण कर पाने में;
- श्रुति प्रमाण से अज्ञान का निरूपण कर पाने में;
- अज्ञान की दो शक्तियों को जान पाने में।

20.1 अज्ञान का लक्षण

'अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' (गीता) गीता के इस वचन से ज्ञात होता है कि, ज्ञान अज्ञान से ढका है। न केवल इतना अपितु ज्ञान के ढ़के होने के कारण अज्ञानवश प्राणी मोहित होता है, विवेकहीन होता है, सही व गलत में भेद नहीं कर पाता है, इस कारण से निषिद्ध कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। फिर उससे उसके कर्मों का फल उदय होता है और फल भोगने के लिए उसे बार-बार संसार में जन्म लेकर आना पड़ता है इसीलिए उसे संसारी कहा जाता है। हमने पढ़ा कि अज्ञान आत्मा के शुद्ध ज्ञान स्वभाव को ढकता है। इससे ज्ञात होता है कि, वेदान्त दर्शन में अज्ञान ही बन्धन का कारण है इसलिए साधक मोक्ष के लिए अज्ञानरूपी बन्धन को दूर करे तथा उसको दूर करने के लिए अज्ञान को जानना आवश्यक है। नैयायिकों के समवाय में लक्षण प्रमाणों से ही वस्तु की सिद्धि होती है ऐसी प्रसिद्धि है इसलिए अज्ञान का लक्षण क्या है वह आत्मा को कैसे बाँधता है इत्यादि विषय जानने योग्य हैं।

वेदान्तसार सदानन्दयोगीन्द्र के अज्ञान का लक्षण कहा है कि, ''अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिवर्चनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति''। इस लक्षण में कहे गये सभी शब्दों का अर्थ विस्तार करते हैं-

20.1.1 अज्ञान की त्रिगुणात्मकता

जगत के उपादान का कारण ही अज्ञान है। वह त्रिगुणात्मक है ऐसा सांख्य योग व वेदान्ती मानते हैं। तीन गुणों का समाहार तीन गुण (त्रिगुणं), और तीन गुण वाली आत्मा ही स्वरूप है जिसका वह त्रिगुणात्मक यह विग्रह है। सत्व, रज व तम ये तीन गुण हैं। जगत का उपादान कारण अज्ञान त्रिगुणात्मक है इस विषय में स्वयं वेद ही प्रमाण हैं। इसीलिए श्वेताश्वेतर उपनिषद् में-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजामानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽश्नुते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥
(श्वे. उ. 4/5)

यहां पर लोहित शुक्ल व कृष्ण शब्द से सत्वादि तीन गुणों को ही जाना जाता है। माया के कार्यों की त्रिगुणात्मकता यहाँ पर सरूपाः इस पद से जानी जाती है और स्थानों पर भी जैसे- दैवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेन ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता 7/14)

और सत्त्व रज व तम गुण से युक्त यह अज्ञान सम्पूर्ण जगत को चलाता है। यह प्रकृति भी तीन गुण वाली है। इसलिए-

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ (गीता 4/5)

सत्त्व गुण का लक्षण -

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ (गीता 14/6)

उपाधि सहित वैषयिक सुख अथवा वृत्यात्मक अनित्य ज्ञान अथवा सत्त्व गुण का विषय। इच्छादि विषय धर्म सम्बन्धी चित् अपने में उत्पन्न करते हैं। विषय धर्म को विषय में आरोपित कर मैं सुखी हूँ ऐसा व्यवहार करते हैं। इस विषय में जैसे भाष्य में- मैं सुखी हूँ इस विषय भूत सुख का विषय आत्मा में संश्लेष का आपादान असत्य ही सुख का अनुभव है। वही अविद्या है। अविद्या ही स्वकीय धर्म के माध्यम से विषय व विषयी में अविवेक लक्षण से न अपने में होने वाले सुख से सुख में हूँ ऐसा अनुभव कराते हुए दुःखी को सुखी हूँ ऐसा प्रतिभान कराती हैं।

रजोगुण का लक्षण

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ (गीता 14/7)

तृष्णा अप्राप्त की अभिलाषा, प्राप्त विषय में मन की प्रीति का लक्षण संश्लेष है।

तमो गुण का लक्षण -

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥ (गीता 14/8)

20.1.2 अज्ञान की अनिर्वचनीयता

निर्वचन इसका अर्थ ही है कि, शब्द से प्रकाशन। जैसे- कम्बुग्रीवादि वाले जल निकालने वाले पात्र का निर्वचन क्या है, घट यह है, अर्थात् घट शब्द से वह पात्र जाना जाता है। घट यह पद है, उसके जैसा पात्र यह अर्थ है। अतः उस जैसे पात्र का निर्वचन है। अतः पात्र निर्वचनीय है, हमारे व्यवहार में जो पद आते हैं, शास्त्रों में शास्त्रकारों ने पारिभाषिक पदों से पुरस्कृत किये होंगे। उसी प्रकार से किसी शब्द से किसी भी अर्थ का प्रकाशन ही निर्वचन है, जब कभी कोई वस्तु या अर्थ अनिर्वचनीय होता है

ऐसा कहा जाता है तब उसका अर्थ है कि उसे प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। किसी भी प्रसिद्ध पद से अथवा प्रसिद्ध अर्थ में जो पद प्रयुक्त होते हैं उस प्रकार के पद से अभिधान नहीं होता है। जैसे मनुष्यों में किसी व्यक्ति को पुरूष किसी को स्त्री ऐसा कहा जा सकता है परन्तु जो स्त्री या पुरूष नहीं है उसका निर्वचन कैसे किया जाए। पुरूष पद से उसका निरूपण या निर्वचन सम्भव नहीं है स्त्री पद से भी उसका निरूपण सम्भव नहीं है अतः यह जानना चाहिए कि स्त्री व पुरूष इन दोनों पदों से वह व्यक्ति अनिर्वचनीय/अव्यपदिष्ट/अनामधेय है, वह व्यक्ति स्त्री पुरूष इन दोनों ही पदों से निर्वचनीय नहीं है। अर्थात् पुरूषत्व भी तथा स्त्रीत्व भी उसमें है क्या, यदि है तो, स्त्रीत्व पुरूषत्व उभय युक्त है वह व्यक्ति। यदि किसी वृक्ष में आम भी है और बेर भी है तो वह वृक्ष आमबेरात्मक है ऐसा कह सकते हैं। उसी प्रकार वह व्यक्ति स्त्रीत्व व पुरूषत्व दोनों ही प्रकार से युक्त है क्या? यदि नहीं तो उसका क्या स्वरूप है, अतः नपुंसक ऐसे तृतीय पद का निर्माण करके व्यवहार किया जाता है।

अज्ञान अनिर्वचनीय है यह वेदान्त का सिद्धान्त है। अनिर्वचनीय का सद्रूप अथवा असद् रूप से निरूपण असम्भव है। जैसे लोक में घट व पटादि वस्तु सद् रूप से अनुभूत होने से घटादि वस्तु सद् ऐसा निरूपण किया जाता है। किन्तु आकाश पुष्प असद् रूप से अनुभूत है। अतः वह असद् है ऐसा कहा जाता है। उसी प्रकार अज्ञान भी सद् रूप से अथवा असद् रूप से निरूपित नहीं हो सकता। इसलिए अज्ञान को अनिर्वचनीय कहा जाता है।

यहाँ पर विचार योग्य है कि- सद् क्या है? और असद् क्या है? जो तीनों कालों में किसी से बाधित नहीं होता है वह सद् है इसीलिए कहा गया है कि, कालत्रय से अबाधित सद् है यद्यपि अज्ञान भी किसी लौकिक उपाय से बाधित नहीं होता तथापि परम मंगल से ब्रह्म के साक्षात्कार से तो अवश्य ही दूर होता है अज्ञान सद् होता तो ब्रह्मज्ञान से बाधित नहीं होता। किन्तु अज्ञान ज्ञान से बाधित होता है अतः अज्ञान को सद् रूप ऐसा नहीं कह सकते। ब्रह्म रूप से बाधित होने के कारण सत्त्व रूप से व्याख्या नहीं की जा सकती।

असद् क्या है? जो तीनों कालों में प्रतीत न हो वह असत् या असत्त्व है, जैसे- आकाश पुष्प कभी भी किसी ने नहीं देखा है। जो तीनों कालों में ज्ञान का विषय नहीं होता वही असत् पदार्थ है। (शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः इति योगसूत्रदिशा।) अज्ञान असत् भी नहीं है। अज्ञान के असत्व में प्रत्यक्ष विषयत्व ही ना हो। परन्तु 'ब्रह्म न जानामि अहमज्ञः' इस प्रकार से प्रत्यक्ष से अज्ञान का अनुभव होता है। इस कारण प्रतीति का विषय होने से अज्ञान असत् भी नहीं है।

अज्ञान के असत्व में जगद् के उपादान कारण से अनुपपत्ति। अज्ञान के असत् तत्व में जगद् का उपादान कारणतव प्रतिपादित न हो।

नापि सदसदुभयात्मकम् अज्ञानम्- सत्त्व व असत्त्व का एकत्र विरोध होने से। सत्त्व से व असत्त्व से अनिर्वचनीय होने के कारण अज्ञान की अनिवर्चनीयता है।

वस्तुतः यह अज्ञान ब्रह्म से भिन्न नहीं है, ब्रह्म से भिन्न को मिथ्या मानने के कारण।

नाप्यभिन्ना चैतन्यजड़योरैक्यायोगात्।
भिन्नाभिन्ना-एकत्रैव विरूद्धधर्मयोरसम्भवात्।।

जैसा कि शंकराचार्य जी के द्वारा विवेकचूड़ामणि में-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनियरूपा।। इति

20.1.3 अज्ञान की भावरूपता

जगत के उपादानत्व से प्रतिपादित यह अज्ञान भावरूप है या अभावरूप यह विचारणीय है। न्याय दर्शन में अज्ञान शब्द से वह अविद्या शब्द से ज्ञान के अभाव को बतलाया जाता है। किन्तु वेदान्त में अज्ञान का स्वरूप भावात्मक ही है ऐसा प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है। अज्ञान के भावरूप में जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है वैसे ही वेद स्मृति आदि भी प्रमाण है।

अज्ञान के भावरूप में साक्षी के ज्ञान से प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। मैं अज्ञानी हूँ, मैं नहीं जानता यह प्रत्यक्षात्मक अनुभव अज्ञान के भाव स्वरूप को बतलाता है। वहाँ अहमज्ञः इसका अज्ञानवान् यह अर्थ है। और वह अनुभूत अज्ञान अभाव के अतिरिक्त भाव रूप ही है न कि अभाव रूप, अद्वैत वेदान्त के मत में अभाव अनुपलब्धि प्रमाण से जानने योग्य है न कि प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय है, अज्ञान के प्रत्यक्ष विषयत्व स्वीकार से अज्ञान अभाव रूप नहीं है।

नीहारेण प्रवृत्ताः, अनृतेन हि प्रत्यूढ़ा इत्यादि श्रुतिवाक्य अज्ञान के भावरूप में प्रमाण हैं।

यहाँ पर अनृत शब्द से अज्ञान जाना जाता है, अज्ञान से प्रत्युदाः विरोटिताः यह अर्थ है। भावात्मक रूप होने पर अज्ञान का आत्मस्वरूपतिरोधान योजित होता है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। (5/15)
नाहं प्रकाशं सर्वस्य योगमायासमावृतः। (7/25)

इत्यादि स्मृतियां भी आत्यस्वरूप अज्ञान से आच्छादित है ऐसा बतलाती हैं। अज्ञान के अभावरूपता में अभावात्मकज्ञान से ब्रह्मस्वरूपावरकत्व उपपादित नहीं होता है श्रुतिस्मृति के प्रमाण बल से ब्रह्मस्वरूपावरकत्व से भावरूप ही अज्ञान है ज्ञात होता है।

यद्यपि अज्ञान अविद्या है पद श्रवण होने के बाद ही ज्ञान का अभाव अज्ञान है,

विद्या का अभाव अविद्या प्रतीत होता है, तब भी 'नाभावात् भावोत्पत्तिरिहि'' न्याय से राग द्वेष स्मित इत्यादि अविद्या कार्यों की उत्पत्ति वेदान्ती अभाव से नहीं मानते हैं। सत्कारणवादी वेदान्तीयों के द्वारा किसी भी पदार्थ की अहेतु से उत्पत्ति स्वीकार्य नहीं है। सभी कार्य सकारण हैं इसलिए। कोई भी कार्य आकस्मिक नहीं है यह वेदान्त का सिद्धान्त है, इसी कारण अनुभूतमान राग द्वेष इत्यादियों का भावरूप अज्ञान का कारण है ऐसा कल्पित किया जाता है।

श्रीमान् सर्वज्ञात्ममुनि के द्वारा संक्षेपशारीरिक में कहा है कि-

'न अभावातास्य घटते वरणात्मकत्वात्, न अभावरणमाहुः
अभावशोण्डाः।
अज्ञानमावरणमाह च वासुदेवः, तद्भावरूपमिति तेन वयं प्रतीयः॥

और भी चैतन्य आवरकत्व से अज्ञान का भावरूप अपेक्षित होता है। वस्तुतः तो अद्वैतसिद्धिकार का मत यही प्रतिपादित करता है कि- भावरूप से ही अभाव विलक्षण है।

और जड़रूप अज्ञान का साक्षी के द्वारा ही भास होता है, साक्षी चैतन्य से ज्ञान स्वरूप से अज्ञान को प्रकाशित करता है। साक्षी का चैतन्य विषय से व अनुभव विषय से अज्ञान भावरूपी है यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

20.1.4 अज्ञान की ज्ञानविरोधिता

अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जगत के उपादान भूत अज्ञान का जन्म मरण के दुःख के निदान का ब्रह्म ज्ञान से नाश होता है। वहाँ अज्ञान की ज्ञानविरोधिता ही स्वभाव है। जैसे यह रजत है इस भ्रान्ति स्थल में अंशत्व से शुक्ति ज्ञान होने पर भ्रम का उपादान अज्ञान विनष्ट होता है। वैसे ही विशुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से अज्ञान अपने कार्य के साथ आत्यन्तिक रूप से दूर होता है। ज्ञान विरोधिता क्या है ऐसा कहने पर-

प्रमाणसहिष्णुता ही ज्ञान विरोधिता है।

सुरेश्वराचार्य ने कहा है-

अविद्याया अविध्यात्वे इदमेव तु लक्षणम्।
यत्प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्॥ (बृहदारण्यकवार्तिकम् 181)

प्रमाण के द्वारा परीक्ष्यमान वह अविद्या अपने कार्यों सहित बाधित होती है। सूर्योदय के समकाल में ही अन्धकार का नाश होता है वैसे ही ज्ञान के उदय के समकाल में ही अविद्या का नाश होता है। और वह भी किसी विचार अथवा प्रमाण परीक्षा को सहन नही करती यह सभी के अनुभव द्वारा सिद्ध ही है। इस प्रकार प्रमाण सहिष्णुता ही अज्ञान की ज्ञानविरोधिता है। अविद्या की ज्ञान निवृत्ति में श्रुतिस्मृतियां ही प्रमाण हैं। जैसे कि श्रुति में-

तमेव विहित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः
पन्था वियते अमनाय इति, तरति शोकमात्मवित्
(छात्र उ. 7/1/3) इति।

स्मृति भी-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ (गीता 5/16)

20.1.5 अज्ञान की अनादिता

जगत के परिणाम का उपादान अज्ञान की अनादिरूपता है ऐसा वेदान्ती मानते हैं, इसीलिए अनादि उपादान ज्ञाननिवृत्ति अज्ञान ऐसा कहते हैं। अज्ञान के अनादित्व में श्वेताश्वेतरोपनिषद् का मन्त्र उदाहरण रूप में प्रस्तुत करना उचित है- जैसे-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां ब्रह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणंऽनुशेते जहात्येनां मुक्तभोगामजोऽन्यः॥
(श्वे. उ. 4/5)

यहां पर अजा शब्द से नहीं होता है इस निर्वचन से अजा शब्द का अनादिरूपज्ञान में तात्पर्य है ऐसा शास्त्रविद् कहते हैं। और साम्प्रदायिक वचन भी यहाँ प्रमाण है-

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्मिदा।
अविद्या ताच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥

अनादि रूप वाले भी इस अज्ञान का ज्ञाननिवृत्तित्व ही स्वीकृत है न कि उसका नित्यत्व। ब्रह्मसाक्षात्कार के पर्यन्त वह माया अबाधित होकर अनुवर्तित होती है यह विवेक है।

20.2 अज्ञान के उपादान में प्रमाण

प्रमाण के बिना लोक में कोई भी वस्तु साध्य नहीं है, 'मानाधीना मेयसिद्धिः' यह शास्त्र मर्यादा है। प्रमा के प्रति असाधारण कारण प्रमाण होता है। अनादि भावरूप यह अज्ञान पूर्व ही लक्षित है। अब अज्ञान में प्रमाणों का विचार कर रहे हैं, वेदान्त शास्त्र में बहुत से प्रमाणों के माध्यम से अज्ञान को निरूपित किया जाता है। अज्ञान के उपादान में साक्षी का अनुभव ही परम प्रमाण है। मैं अज्ञानी हूँ, मैं नहीं जानता हूँ, यह अपरोक्ष अनुभूति भावरूपी अज्ञान को प्रमाणित करती है। अन्तःकरण उपाधि वाला चेतन साक्षी कहा जाता है, और जीव की साक्षी की अहमज्ञः यह अपरोक्ष अनुभूति ही प्रमाण होती है।

सोकर उठे पुरूष का 'न किञ्चिदवेविषम्' यह परामर्श भी अविद्या के उपपादन में प्रमाण है।

ऐसे ही कोई पुरूष गहरी निद्रा से उठकर/उठाने पर कहता है कि मुझे सुख की अनुभूति हुई परन्तु कैसे, यह नहीं पता। तो उसने सुसुत्ति अवस्था में अज्ञान का अनुभव किया, इसी कारण सुसुप्ति से उठे हुए का कुछ नहीं जानना यह परामर्श सम्भव होता है, 'न किञ्चित ज्ञातम्' यहाँ ज्ञान का अभाव विषय नहीं है। क्योंकि गहरी निद्रा में ज्ञान का अभाव नहीं अनुभूत होता।

कहा गया है पञ्चदशी में-

सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमो बोधो भवेत् स्मृतिः।
सा चावबुद्धविषया अवबुद्धा तत्तदा तमः॥ इति।

गहरी निद्रा में से उठे हुए का निद्रा विषय की जो स्मृति है वह अज्ञान के उपपादन में प्रमाण है यह अर्थ है।

20.2.1 अज्ञान कार्यानुमेम

माया (अज्ञान) परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की माया को आश्रित करके ही इस जगत् का सृजन होता है। जो शक्ति है, वह शक्ति कार्य से अनुमेय होती है। जैसे दण्डदीप (ट्यूबलाईट) में विद्युत है यह दीप प्रकाश से जाना जाता है, तथा सत्त्व रज तम गुणों से मुक्त माया कार्यमुख से जानी जाती है।

माया शक्ति का स्वरूप बताया है भगवान शंकराचार्य ने -

अव्यक्तनारी परमेशशक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सुधिमैव माया यमा जगत् सर्वमिदं प्रस्यूते॥

20.3 अज्ञान का जगत्कारणत्व विचार

अज्ञान ही जगत का कारण है। अज्ञान सम्बन्ध से ही ब्रह्म जगत के उपादान निमित्त व कारण होता है। जैसे श्रुति में-

यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च, यथा प्रथिव्यामोषधमः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात् कैशलोमनि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(मु. उ. 1/1/7) इति।

यह विषय प्रथम पाठ में जान लिया गया है। अब माया (अज्ञान) भी जगत का कारण होता है या नहीं यह विचारणीय है। अज्ञान प्रपञ्च के प्रति उपादान कारण है या निमित्त कारण है यह परीक्षणीय है। सभी कार्यों में स्वकार्य के गुणविशेष अनुभूत किए जाते

हैं। जैसे-मिट्टी के उत्पन्न घट में मिट्टी के गुण प्रतीत होते हैं। तन्तुओं द्वारा उत्पन्न (निर्मित) वस्त्र में तन्तु के कण प्रतीत होते हैं। वैसे ही यह जगत भी स्वकारण के अनुरूप होता है। कार्य व कारण का समान स्वभाव होता है। कभी भी कार्य अपने कारण से अति विरूद्ध स्वभाव का नहीं होता है। किन्तु यह जगत् जड़त्व से जाना जाता है। जगत में राग द्वेष मोहादि गुण अनुभूत होते हैं, इसमें अनित्यवाद आदि हेयगुण होते हैं। जगत् का कारण ब्रह्म चेतन व निर्गुण है। जगत में अनुभूत होने वाले जड़त्व अनित्यत्व आदि ब्रह्म के गुण नहीं है, इस कारण ब्रह्म से भिन्न जड़ वह त्रिगुणात्मक अज्ञान जगत का उपादान कारण है यह स्वीकार करना चाहिए। (ब्रह्म जगत का उपादान व निमित्त कारण होता है किन्तु अज्ञान भी उपादान कारण है यह विशेष है।)

वेदान्त सम्प्रदाय में भी कहा है-

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्मंशपंचक्म्।
आध्यत्रर्य ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्रमम्।। इति

''अस्ति भाति प्रियम्'' इन तीनों के द्वारा सत् चित् व आनन्द ब्रह्म का स्वभाव प्रदर्शित किया गया है। नाम व रूप ये जगत कारण अज्ञान के स्वभाव निरूपित हैं। जैसे कार्य जगत में सच्चिदानन्द ब्रह्म का धर्म अनुभूत होता है, वैसे ही नाम रूप, राग द्वैषादि, जड़त्व अनित्यवादी धर्म भी अनुभूत होते हैं। सर्वदा सत्व रज तम गुणों से अन्वित ही यह जगत कार्य अनुभूत होता है। कार्य में अनूभूतमान धर्मो की उपादान कारण अनुगति ही कहनी चाहिए। इसलिए ब्रह्म माया (अज्ञान) ये दोनों जगत के उपादान कारण है यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

माया के जगत उपादान में श्रुति प्रमाण हैं,

जैसे- इन्द्रो मायाभिः पुरूष इक्षते (ऋ. सं. 1/14/18) इति।

जैसे - अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः (श्वे. उ. 4/5) इति।

अज्ञान जगत की सृष्टि में परिणाम व उपादान कारण कहा जाता है। जैसे मिट्टी घट के आकार में परिणत होती है तथा अज्ञान स्थूल प्रपञ्चकार से परिणत होता है।

अज्ञानं च परिणम्युपादानम्। परिणामोहि उपादान समसत्ताककार्यापत्तिः। जैसे कार्य की सत्ता उपादानकारण के समान, वह कार्य उपादानसमसत्तातमकम् कहा जाता है। (वेदान्त दर्शन में तीन सत्ताएं बताई है जैसे- पारमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, प्रातिभाषिक सत्ता।)। कार्य की उपादान समसत्ता का अन्यथाभाव ही परिणाम है। माया की व्यवहारिक सत्ता होती है। और कार्य कारण की सम सत्ता में अन्यथाभाव होता है। प्रपञ्च के अज्ञान उपादानकारणसलक्षण अन्यथाभाव है। और अज्ञान जगत् की सृष्टि में परिणाम-उपादान कारण है यह वेदान्त का तात्पर्य है।

टिप्पणी

20.4 अज्ञानभेदविचार (एकजीववाद-नानाजीववाद के आश्रय से)

वेदान्त शास्त्र में अज्ञान के भेदविचार बहुत प्रकार से विहित हैं। जैसे -

20.4.1 समष्टि व व्यष्टि की बुद्धि से अज्ञान एक व अनेक

यह अज्ञान समष्टि व व्यष्टि की बुद्धि से एक व अनेक ऐसा जाना जाता है। समष्टि बुद्धि अर्थात् बहुत से अवयवों की समूह बुद्धि। जैसे बहुत से वृक्षों का समूह वन।

और उसी समूह के प्रत्येक अवयव की दृष्टि व्यष्टि बुद्धि कहलाती है जैसे- वन में व्यष्टि बुद्धि से वृक्ष यह व्यवहार होता है। अतः एकत्वबुद्धि से समूह व्यवहार होता है।

अतः जीवों में अज्ञान की समूह बुद्धि से अज्ञान एक ही है। इसमें 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' यह प्रमाण है। (जैसे - वृक्षों का समष्टि के अभिप्राय से वन यह एकत्व व्यपदेश है और जैसे जल का समष्टि अभिप्राय से जलाशय यह कहा जाता है, और नानात्व से अनुभूत होने वाले जीव गत अज्ञान का समष्टि अभिप्राय से एकत्व व्यपदेश (वेदान्तसार) इति।) यह अज्ञान उत्कृष्ण परब्रह्म की उपाधि से शुद्धसत्त्वप्रधान कहा जाता है। और समष्टि ज्ञान उपाधि वाला चैतन्य ही ईश्वर व अन्तर्यामी कहा जाता है। ''यः सर्वज्ञः सर्ववित्'' यह श्रुतिप्रमाण है।

हम सभी मनुष्य है यह एकत्व व्यवहार समष्टि अभिप्राय से होता है। किन्तु व्यष्टि अभिप्राय से हममें राम, कृष्ण यह भेद व्यवहार होता है।

अज्ञान अनेक हैं, यहाँ श्रुति प्रमाण जैसे- ''इन्द्रो मायाभिः पुरूष ईक्षते'' (ऋ.सं. 9/47/18) इति। इन्द्र परमेश्वर मायाओं के द्वारा बहु रूपों से प्रकाशित होता है। यह अज्ञान जीव उपाधि से मलिन सत्त्वप्रधान ऐसा व्यवहित होता है।

और समष्टि व व्यष्टि बुद्धि से अज्ञान एक व अनेक हैं। यह वेदान्त सिद्धान्त है। अज्ञान माया-अविद्या इस तरह दो प्रकार से निरूपित होता है।

जैसा कि, पञ्चदशी में कहा है-

तमोरजस्सत्त्वगुणा प्रकृतिः द्विविधा च सा।
सत्त्वशुद्धयविशुद्धिश्यां मायाविद्ये च ते यते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्मर्वइ ईश्वरः।
अविद्यमावशगस्त्वन्यः तध्वैचित्रयादनेकथा।।

टिप्पणी

20.4.2 जीव-ईश्वर की उपाधि की दृष्टि से

अज्ञान माया अविद्या के भेद से दो प्रकार का तीन गुणों के आधार पर विभाग-

शुद्धसत्त्वप्रधान अज्ञान को माया कहते हैं। मलिन सत्त्व प्रधान अज्ञान को अविद्या कहते हैं। यहाँ क्या शुद्ध सत्त्व है? रज व तम से तिरस्कृत नहीं किया गया सत्त्व शुद्धसत्त्व कहलाता है।

रज व तम से अभिभूत सत्त्व मलिनसत्त्व है।

यह भेद अज्ञान के विषय में श्रुति में प्रदर्शित है जैसे-

''जीवेशौ आभासेन करोतिमाया चाविद्या च स्वयमेव भवति। (नृ.उ. 9/3) इति।

शक्ति के भेद से अज्ञान -

अज्ञान -

ज्ञान शक्ति	क्रिया शक्ति
रज व तम से अनभिभूत सत्त्व ज्ञान है। ''सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्'' इस गीता वचन से भी।	सत्त्व से अनभिभूत रज व तम में क्रिया शक्ति।
आवरण शक्ति	**विशेष शक्ति**
रज व सत्त्व से अनभिभूत तम है, (कृष्णः तमः आवरणात्मकत्वात्) इस भाष्य वचन से। 'नास्ति न भासते' यह व्यवहार हेतु है।	तम व सत्त्व से अनभिभूत रज है। (रजसो लोभ एव च) इस गीता वचन से। आकाशादि प्रपञ्च की उत्पत्ति हेतु है। (विक्षेपशक्तिः लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्)
आवरण शक्ति अविद्या	ज्ञान शक्ति प्रधान, विवेक शक्ति प्रधान माया
अविद्या से उपहित जीव है वही प्राज्ञ अपद वाच्यार्थ है।	माया से उपहित चैतन्य ईश्वर है, अन्तर्यामी अपद वाच्यार्थ है।

भगवान् शंकराचार्य ने कहा है- ''अविद्यायाः सामसत्वात्। तामसो हि प्रत्ययः आवरणात्मकत्वाद् अविद्या, विपरीतग्राहकः संशयोपस्थापको वा अग्रहणात्मको वा। विवेकप्रकाशभावे तदभावात्।'' (गीता. 13/2)

जब यही सत्त्व निरतिशयसुख तथा ब्रह्मज्ञान विषय होता है तब बन्धनरूपी सत्त्वगुण मोक्षोपयोगी होता है। इसीलिए भगवती देवात्मशक्ति पुरूष के बन्धन व मोक्ष की प्रयोजिका है।

इसीलिए गीता में भगवान् -

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता 7/14)

माया का आत्मशक्तिस्वरूप दुर्गासप्तशती में भी कहा गया है-

''देव्या यथा ततमिदं जगदात्मशक्तया'' इति।

20.5 जीवाश्रित ब्रह्मविषयिणी माया

भामती पक्ष में भामतीकार के मत के अनुसार माया का आश्रय जीव है न कि ब्रह्म, जीवाश्रित माया ब्रह्म विषय करती है ऐसा मण्डनमिश्र वाचस्पतिमिश्र इत्यादि का मत है।

1) अहमज्ञः ब्रह्म न जानामि इस प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव के अज्ञान आश्रय की प्रतीति होती है। अहमज्ञः यहाँ पर साक्षाद् जीव का अज्ञानाश्रय ज्ञात होता है। यदि वहां पर शुद्धचैतन्य का ही अज्ञान आश्रय हो तो तब सभी को एक साथ यह अनुभव होना चाहिए, परन्तु ऐसा अनुभव नहीं होता है। अहमज्ञः यहाँ पर अहंकारोपहित प्रतीति से देहेन्द्रिय संघात उपाधि युक्त जीव ही प्रतीत होता है, उसी का अज्ञानाश्रम उचित है।

   शुद्ध ब्रह्म में अज्ञान का आश्रय अन्वित नहीं होता है- स्वप्रकाश में शुद्ध ब्रह्म में उसके विपरीत स्वभाव का अज्ञान का आश्रय ही नहीं होता है। अन्धेरा प्रकाश के विरूद्ध स्वभाव के कारण।

2) भगवान् भाष्यकार का वाक्य भी अविद्या जीवान्वित है इस विषय में प्रमाण है। भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक के भाष्य में कहा है- ''सा अविद्या कस्य? यस्य दृश्यते तस्मैव, दृश्यते चेद् अविद्या तद्वन्तमपि पश्यति। न च तद्वति उपलभ्यमाने सा कस्य इति प्रश्नो युक्तः। न हि गोमति उपलभ्यमाने गावः कस्य इति प्रश्नः अर्थवान् भवेत्।'' इति (गीता. 16/2)

ब्रह्मविषयक अविद्या जीवान्वित है न कि ब्रह्म आश्रित। जैसा कि ब्रह्मसिद्ध में कहा है-

''कस्यविद्येति जीवानामिति ब्रूमः।''

भामती में भी कहा है- ''ना विद्या ब्रह्माश्रया किन्तु जीवेसा तु अनिर्वचनीया''।

आक्षेप का समाधान

जीव के अविद्याश्रय में अन्योन्याश्रय दोष होता है यह विवरण अनुयायियों का आक्षेप है, क्योंकि अज्ञान का निमित्त ही जीव विभाग है और जीव विभाग में अज्ञान संज्ञा अन्योन्याश्रय दोष को उत्पन्न करती है। उसका समाधान किया कि, जैसे जीव का वैसे ही अज्ञान का दोनों के ही अनादित्व के कारण अन्योन्याश्रय नहीं है। भामती में कहा

हैं- ''कार्यकारण-अविद्याद् वयाधार: अहंकारास्पदं संसारी सर्वानर्थसंभारभाजनं जीवात्मा इतरेतराध्यासोपादान: तदुपादानश्चाध्यास: इत्यनादित्वात् बीजांकुरवद् नेतरेतराश्रयत्वम्''।

जहाँ पर माया ब्रह्माश्रित है ऐसा श्रुतियों में सुनते हैं ''मायिनं तु महेश्वरम्'' वहाँ पर निमित्त विषय से ब्रह्माश्रय होता है न कि आधार रूप से। जैसा भामती ने कहा है- जीवाधिकरणा अपि अविद्या निमित्ततया विषयतया चेश्वरमाश्रयते इति ईश्वराश्रया इति उच्यते न तु आधारतया''।

वह अविद्या जो जीवान्वित है नाना जीवों में बन्ध मोक्ष की व्यवस्था भी उत्पादित करती है। जिसका अविद्या का आश्रय है वह जीव बन्ध जिसकी अविद्या नष्ट उसको मोक्ष यह संक्षेप में कह सकते हैं।

इस प्रकार से यह भामती सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म विषयक जीवान्तित माया का सिद्धान्त है।

20.6 ब्रह्मविषयक शुद्धब्रह्माश्रित माया

विवरण पक्ष अविद्या जीव व ईश्वर विभाग से रहित शुद्ध ब्रह्म का ही आश्रय लेती है, शुद्ध ब्रह्म को ही विषय बनाती है।

''नन्वविद्या किं सम्बन्धिनी भेदनिमित्तम् ?.....इहापि चित्स्वरूपसम्बन्ध्यज्ञानं तत्र जीवब्रह्मव्यवहारभेदं प्रवर्तयति।
(विवरणवाक्यम्)

शुद्ध ब्रह्म ही यदि अज्ञान का आश्रय हो तो अहमज्ञ: यह अनुभव विरोध होगा, इस अनुभव में अहं पद का वाच्य (अर्थ) जीव ही आश्रय सम्बन्ध से जाना जाता है, यहाँ पर समाधान-

आश्रयत्व विषयत्व भगिनी निर्विभागचितिरेव केरला।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर:।।

अर्थ यह है कि- पूर्वसिद्ध अज्ञान का पश्चात् सिद्ध जीव आश्रय नहीं है, न ही विषय है, जीव विभाग का निमित्त ही अज्ञान है। जीव आत्मा से पूर्व अज्ञान का निराश्रयत्व प्रसंग है।

विवरण अनुयायी माया के ब्रह्म आश्रित विषय में- श्रुतिस्मृतिभाष्यमेव प्रमाणम् ऐसा कहते हैं।

1) मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।

2) मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्

मम माया दुरत्यया (गी. 7/14) इति।

3) अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिः अव्यतम शब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्वरूपप्रतिबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः (ब्र.भा. 1/4/3) इति।

आक्षेप का समाधान

माया के शुद्ध ब्रह्माश्रय के विषय में भास्कार रामानुज तथा अन्यों ने यह प्रश्न उपस्थापित किया–

वह ऐसे कि–ब्रह्मस्वरूप से विपरीत स्वभाव वाली माया स्वप्रकाश ब्रह्म में कैसे आश्रित हुई, अन्धेरे व प्रकाश के समान विरूद्ध स्वभाव वाले ब्रह्म व माया का सम्बन्ध कैसे? शुद्ध ब्रह्म अज्ञानाश्रय कैसे हो सकता है अपने स्वप्रकाश के कारण–

यहाँ पर समाधान जैसे- शुद्ध चैतन्य अज्ञान विरोधी नहीं है, न ही अज्ञान के तिरस्कार का उपयोगी है किन्तु वृत्तिप्रतिबिम्बित चैतन्य ही अज्ञान विरोधी है। वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य ज्ञान का आश्रय नहीं है। और जो अज्ञान का आश्रम शुद्ध ब्रह्म वह भी अज्ञान विरोधी नहीं है, जैसे शुद्ध स्वर्ण हार की उपयोगिता नहीं है वैसे ही शुद्ध निन्मात्र अविद्या की निवृत्ति में उपयोगी नहीं है। कहा भी है अद्वैतसिद्ध में- ''अज्ञानविरोधि ज्ञानं हि न चैतन्यमात्रं किन्तु वृत्तिप्रिबिम्बित तत्व ना विद्याश्रमः, यच्चाविद्याश्रयः तत्व नाज्ञानविरोधि।'' यहाँ पर सिद्धान्त का स्वास्थ्य वार्तिककार सुरेश्वराचार्य उपस्थापित करते हैं- जैसे-

तृणादेर्भासिकाप्येषा सूर्यदीप्तितृणं दहेत्।
सूर्यकान्तमुपारूह्य न्यायोऽमं योज्यतां धिया॥

जैसे-सूर्य का प्रकाश तृणादि का भासक/प्रकाशक तथा सूर्यकान्तमणि सम्बन्ध से तृणादि का नाशक भी है वैसे ही शुद्धचैतन्य अविद्या के कार्यों में स्वतः प्रकाशक, तथा शुद्धचैतन्य वृत्तिप्रतिबिम्बित होकर अविद्यादि का नाशक भी होता है।

शुद्धचैतन्यमात्रं अविद्यासाधकं, तत्प्रकाशकं च भवति
न तु तह बाधकम्।

काँटों से ही काँटों की मुक्ति के समान वेदान्तियों के द्वारा अविवेक पदार्थ ही अविद्या की निवृत्ति वाले माने जाते हैं। इस विषय में सम्प्रदाय प्रसिद्ध दृष्टान्त परशु दृष्टवन्त है–

जैसे वृक्ष को काटने के लिए उसी वृक्ष की लकड़ी को लेकर कुल्हाड़ी के साथ जोड़कर वही वृक्ष काटा जाता है वैसे ही समाधि में जो साक्षात्कारात्मक ब्रह्मविषयक अखण्डकारकवृत्ति है उससे अविद्यानिवृत्ति, उसका भी साक्षात्कारात्मकवृत्ति का अविद्यकत्व के कारण अविद्या के साथ निवृत्ति होती है। यह वेदान्त का मत है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. श्रवणादि का उपदेश किसको लक्षित करके किया जाता है?
2. अज्ञान का नाश किससे होता है?
3. आत्मा हमेशा कौन से स्वरूप वाली होती है?
4. परमात्मा किसकी सहायता से जगत का सृजन करता है?
5. अज्ञान के पर्यायवाची क्या है?
6. जगत के उपादान का कारण क्या है?
7. अज्ञान के तीन गुण क्या हैं?
8. सत् क्या है?
9. असत् क्या है?
10. अद्वैतवेदान्त की दिशा में अभाव का प्रत्यक्ष किससे सिद्ध होता है?
11. अद्वैतवेदान्त में अज्ञान का भावरूप या अभावरूप क्या स्वीकार किया जाता है?
12. ज्ञान विरोधिता क्या है?
13. परिणाम क्या है?
14. अज्ञान एक है या अनेक?
15. शुद्ध सत्त्व क्या है?
16. अज्ञान की दो शक्तियां कौन सी हैं?
17. जीव कौन है?
18. ईश्वर कौन है?
19. भामती के पक्ष में माया का आश्रय कौन है?
20. विवरण के अनुसार माया का आश्रय कौन है?

पाठ का सार

अभी तक यह सिद्ध होता है कि अज्ञान है। वह प्रकाशरूपी आत्मा को, सूर्य प्रदत्त प्रकाश को मेघ के समान आच्छादित करता है। उसके स्वरूप के विषय में

टिप्पणी

विद्वानों में यद्यपि विप्रतिपत्ति होती है तब भी विचार करने पर भावरूपता तथा अभावभिन्नता ही सिद्ध होती है। और उसका लक्षण है- द्वित्रिरूपम्।

अत: लक्षण के द्वारा सम्भावना वशात् वहाँ पर प्रमाणों की खोज होती है। और प्रमाण वहाँ प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम व अर्थावत्ति रूप से चार प्रकार की सद्व्यावृत्ति को सम्पादित करता है। जैसे लक्षण तो साक्षी के द्वारा ही सिद्ध होता है।

और इसका (अज्ञान) आश्रय चैतन्य ही है। और वह भी शुद्धरूप अथवा जीवरूप ऐसा विचार होता है तब भी सभी के मत में चैतन्य ही आश्रयी होता है यह अविवाद है। जीवाश्रित अविद्या इस पक्ष में भी अविद्या कल्पित जीव का आश्रय अविद्या का भी आश्रय नहीं अपितु चैतन्य का ही। अत: सभी का ही परीक्षणों का चैतन्य आश्रितत्व अविद्या का अविरूद्ध है। विषय भी इसका चैतन्य ही है। आवरणरूप विषय का उसके अतिरिक्त असम्भवता के कारण।

और न ही यह सद् से असद् से अथवा सद्सद् से निरूपित हो सकता है। अत: अनिर्वचनीय ऐसा व्यवहार होता है। इसकी अनिर्वचनीयता में चार प्रमाण-प्रत्यक्ष-अनुमान-अर्थापत्ति, आगम रूप हैं। अत: इसकी अनिर्वचनीयता प्रमाणसिद्ध है।

और यह सारे प्रपञ्च का परिणाम मान के द्वारा उपादान है। शुद्ध ईश्वर या चैतन्य की विवर्त उपादानत्व का सम्पादक है। और स्वयं दु:ख जनक होने से दु:ख रूप अनर्थ कहा जाता है। उसकी अनर्थरूप निवृत्ति सम्पादित करनी होती है। और वह निवृत्ति बहुतों के द्वारा बहुत प्रकार की प्रतिपादित की गई है, और उन सब की एकत्र सम्प्रतिपत्ति: है कि इसकी अनर्थ हेतु की निवृत्ति उपपादित होती है और वेदान्तवाक्य जनित तत्वज्ञान साक्षात्कारात्मक ही है।

और तत्वज्ञान से इसकी निवृत्ति होने पर नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव चैतन्य एक रस परिपूर्णानन्द स्वरूप स्वप्रकाश कण्ठगत विस्मृत ज्ञान प्राप्तचामीकर के समान होता है, और उससे मोक्ष सिद्ध होता है।

क्या जाना

1. इस पाठ में अज्ञान का परिचय दिया गया है, इस पाठ को पढ़कर अज्ञान का मुख्य स्वरूप जड़ता है यह ज्ञात हुआ। जड़ता ही अज्ञानता या अनित्यता है।
2. लक्षणों व प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि इस नियम से अज्ञान का लक्षण सद् व असद् से अनिर्वचनीय तीन गुण वाला ज्ञान का विरोधी भावरूप जो कुछ है वह अज्ञान है, यह जाना।
3. सत्त्व, रज व तम ये तीनों अज्ञान के गुण हैं, सत्त्व रज व तम के गुणों में विषमता ही सृष्टि का हेतु तथा जगत का उपादान कारण ही स्वयं अज्ञान होता है, यह जाना।

टिप्पणी

4. सद् रूप से या असद् रूप से अज्ञान क्या है ऐसा निरूपण करने में असमर्थ होने के कारण अज्ञान अनिर्वचनीय है यह छात्र जानता है।
5. अज्ञान के भाव रूप में साक्षी द्वारा जानने के कारण प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। अहमज्ञः यह प्रत्यक्षात्मक अनुभव भावरूप वाला अज्ञान है यह इस पाठ से जाना।
6. अज्ञान की ज्ञान विरोधिता व प्रमाण सहिष्णुता को जाना।
7. जगतः के परिणामी-उपादान का कारण अज्ञान होता है वेदान्त मार्ग में अनादि रूप है यह भी पाठ से जाना।
8. अज्ञान के उपपादन में साक्षी का अनुभव ही परम प्रमाण है यह जाना। सोकर उठे पुरूष का कुछ नहीं जानना यह परामर्श भी अविद्या के उपपादन में प्रमाण है।
9. अज्ञान सम्बन्ध में ब्रह्म जगत सृजन करता है यह ज्ञात हुआ।
10. एक जीव व नाना जीववाद के आश्रय से अज्ञान भेद जाना।
11. भामती मत में अज्ञान के आश्रय जीव विवरण मत में ब्रह्म और दोनों में प्रयुक्त युक्तियां कैसी है यह विचार दृष्टान्त सहित जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. अज्ञान के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. अज्ञान के लक्षण की व्याख्या कीजिए।
3. अज्ञान तीन गुणा वाला है व्याख्या कीजिए।
4. अज्ञान भाव रूप वाला है व्याख्या कीजिए।
5. अज्ञान की ज्ञान विरोधिता की व्याख्या कीजिए।
6. अज्ञान के जगत्कारणत्व की व्याख्या कीजिए।
7. अज्ञान के उपादान में प्रमाण कैसे उपादेय हैं व्याख्या कीजिए।
8. अज्ञान भेद विचार एक जीव बद्धजीव वाद आश्रय से व्याख्या कीजिए।
9. जीवाश्रित ब्रह्मविषयक माया-भामती पक्ष की व्याख्या कीजिए।
10. शुद्धब्रह्म आश्रित ब्रह्मविषयक माया-विवरण पक्ष की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. आत्मज्ञान का उद्देश्य करके श्रवणादि का उपदेश होता है।
2. आत्मज्ञान से अज्ञान का नाश होता है।
3. आत्मा सर्वदा शुद्ध ज्ञान स्वरूप होती है।
4. परमात्मा अविद्या की सहायता से जगत का सृजन करता है।
5. अविद्या, माया, प्रकृतिः, प्रधान स्वभाव, मूलप्रकृतिः, अजा इत्यादि अज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं।
6. अज्ञान जगत का उपादान कारण है।
7. सत्त्व रज तम ये तीन गुण हैं।
8. जो तीनों कालों में किसी से बाधित नहीं होता वह सत् है।
9. जो तीनों कालों में भी प्रतीत नहीं होता वह असत् है।
10. अनुपलब्धि प्रमाण से अभाव का प्रत्यक्ष सिद्ध होता है।
11. भाव रूप ही स्वीकृत है/लिया जाता है।
12. प्रमाणसहिष्णुता ही ज्ञानविरोधिता है।
13. उपादान समसत्ताकार्योत्पत्ति परिणाम है।
14. समष्टि व व्यष्टि भेद से अज्ञान एक व अनेक यह वेदान्त सिद्धान्त है।
15. रज व तम से अतिरस्कृत सत्त्व शुद्धसत्व कहलाता है।
16. आवरण शक्ति व विक्षेप शक्ति।
17. अविद्या उपहित चैतन्य जीव है वही प्राज्ञ है।
18. माया उपहित चैतन्य ईश्वर वही अन्तर्यामी है।
19. जीव।
20. ब्रह्म।

॥ बीसवाँ पाठ समाप्त॥